IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

सामाजिक- न्याय एवं सामाजिक-न्यायिक चरित्र : भारत के सन्दर्भ में

डॉ0 सुनील कुमार उपाध्याय

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, शिक्षक- शिक्षा विभाग, डी. बी. एस. कॉलेज, कानपुर, उ0 प्र0

अनुज कुमार वर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षक- शिक्षा विभाग, डी. बी. एस. कॉलेज, कानपुर, उ0 प्र0

सारांश

भारत दुनियां की प्राचीनतम जीवित सभ्यताओं में से एक है जिसकी नींव वैदिक काल में पड़ी थी । जहाँ तक वैदिक काल की बात है समाज में सभी को समान अधिकार थे, वे किसी भी व्यवसाय एवं वर्ण का चयन कर सकते थे । परन्तु जैसे- जैसे समय बीतता गया इन वर्णों में जटिलता आती गई और व्यवसाय के आधार पर जातियों का निर्धारण होने लगा । साथ ही कुछ जातियाँ उच्च तथा कुछ निम्न हो गई । उच्च जाति के लोग निम्न जाति के व्यक्तियों को हेय समझने लगे एवं तमाम बौद्धिक कार्यों हेतु उन्हें अयोग्य मानने लगे । हमारे ग्रंथों में ऐसे कई उदहारण मिलते हैं । भारत पर विदेशी लोगो के आक्रमणों ने भारतीय समाज को और जटिल बना दिया, जो भेदभाव पहले जाति एवं वर्ण के आधार पर था वह अब धर्म एवं संप्रदाय के आधार पर भी होने लगा । अंग्रेजो के शासन काल में भी कई ऐसे उदाहरण हैं कि जाति प्रथा एवं रुढ़िवादी विचारों के कारण भेदभाव अपने चरम पर था । इन सब असमानताओं को दूर करने हेतु अनेक आन्दोलन किये गये, जिसका यह परिणाम निकला कि भारत की आजादी तक हमारे संविधान निर्माता यह समझ गये थे कि सबको समान अधिकार, समान अवसर एवं सभी की गरिमा को आदर मिलना चाहिये । इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर भारत के संविधान का निर्माण किया गया, जिसमे

सभी को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय देना संविधान का लक्ष्य रखा गया । सामाजिक न्याय मूल, लिंग, जाति, धर्म,जन्म स्थान आदि के पूर्वाग्रह के बिना प्रत्येक व्यक्ति को कानून, न्याय और अवसर तक उचित, निष्पक्ष तथा समान पहुँच प्रदान करना है । सामाजिक न्याय के पांच मुख्य सिद्धांत हैं- छोतों तक सुलभ पहुँच, समता, सहभागिता, विविधता, मानव अधिकार । व्यक्ति अगर इन सिद्धांतों को अपने चरित्र का अंग बना ले तो उसमें सामाजिक-न्यायिक चरित्र का निर्माण हो जाये । प्रस्तुत शोध पत्र में समाजिक न्याय एवं सामाजिक न्यायिक चरित्र के स्वरुप का भारत के सन्दर्भ में वर्णन किया गया है ।

संकेत शब्द :- सामाजिक न्याय, सामाजिक-न्यायिक चरित्र ।

-: प्रस्तावना :-

भारत दुनियां के ऐसे विरले देशों में से एक है जहाँ सभी धर्मों के लोग पाये जाते हैं । प्राचीन काल में भारतीय समाज चार वर्णों में विभाजित था, बाद में भारत पर अनेक विदेशी शक्तियों ने आक्रमण किया और भारत में ही बस गयी, अब समाज में अनेक जातियों एवं वर्गों का समूह बन गया । साथ ही साथ वर्णों में भी कठोरता आती चली गई । जहाँ पूर्व वैदिक काल में कोई भी व्यक्ति किसी भी वर्ण को अपना सकता था वहीं बाद में वर्ण व्यवस्था में परिवर्तन करना मुश्किल हो गया तथा कुछ वर्ण अपने को उच्च तथा दूसरो को निम्न समझने लगे । वर्ण संकर जातियाँ जो अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न हुई थी, ने भारत के समाज में जातियों का जाल बिछा दिया । अब भारत का समाज जातियों का समूह हो गया और हर कोई व्यक्ति अपने जाति हेतु निर्धारित कर्मों से बंध गया । साथ ही अनुसूचित जातियाँ, दलितों और पिछड़ी जातियों के लोग जिन्हें शुद्र वर्ण के अन्त्यज की श्रेणी में रखा गया था वे तमाम तरीकों से उत्पीड़ित हुई जिससे उनकी सामाजिक ही नही बौद्धिक ,आर्थिक व राजनीतिक क्षमताओं पर गहरा कुठाराघात हुआ । धर्म से जुड़ी तमाम मान्यताओं व अंधविश्वासों ने इन जातियों को समाज में गहरे भेदभाव का शिकार भी बनाया स्थिति तो यहाँ तक हो गई कि मनुष्य के रूप में उसे कई स्थानों पर पशुओं से भी निम्नतम स्थान दिया गया । तमाम पशु जहाँ पवित्र मान लिये गये वहीं मानव समाज का एक वर्ग इनसे भी निम्न माना जाने लगा । प्राचीन हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में अन्त्यज मानी गई। जातियों का हिन्दू व्यवस्था में बिलकुल पृथक स्थान था, जैसे वह पाँचवा वर्ण हो । और इन्हें चांडाल कहकर संबोधित किया गया । चांडाल को अस्पृश्य जाति के रुप मे देखा जाता जाता था । प्राचीन हिन्दू व्यवस्था में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होने के कारण हमारी स्मृतियों, संहिताओं, सूत्रों, वेदों, पुराणों, एवं

उपनिषदों को तत्कालीन विधि(न्याय) का आधार सूत्र या सोत माना गया। न्यायलयों में नारद, मनु तथा याज्ञवल्क्य स्मृतियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। परंपरागत भारतीय समाज में न्याय का अर्थ आधुनिक भारतीय समाज के न्याय के अर्थ से बिलकुल भिन्न था। उस कल में जिसे न्याय समझा जाता था वह आधुनिक सन्दर्भो में न्याय की कसौटी पर बिल्कुल खरा नहीं उतर पाता। परंपरागत भारतीय समाज में व्यक्ति एवं समूह का कार्य व्यवहार शास्त्रों, विशेष रूप से मानव धर्म शास्त्र जिसे सामान्यतः हिन्दू सामाजिक विधान कहा जाता है, के द्वारा संचालित होता था। भारत में सर्वाधिक स्वीकार्य मनु का विधान तो सामाजिक न्याय की भावना से इतना दूर निकल जाता है कि समाज का उपेक्षित वर्ग उसे अपने लिये जंजीर से कम नही मानता। यह जन्मजात असमानता और भेदभाव पर आधारित है। आजाद भारत में संविधान लागू होने के बाद हमने न्याय की आधुनिक संकल्पना स्वीकारे की और अपने संविधान में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय का एक महत्वपूर्ण स्थान दिया जिससे कि राज्य के दुर्बल वर्गों को विशेष रूप से शिक्षा एवं अर्थ संबंधित हितों की विशेष चिंता की गयी। तथा सामाजिक अन्याय व सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा हेतु उपाय किये गये। संविधान में मौलिक अधिकारों एवं नीति निर्देशक तत्वों में सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक समानता एवं न्याय की स्थापना हेतु अनेक उपबंध दिए गये हैं। सामाजिक न्याय से आशय यह है कि व्यक्ति एवं व्यक्ति के मध्य सामाजिक स्थिति रंग, धर्म, भाषा, लिंग आदि के आधार पर किसी प्रकार का भेद न किया जाये और राज्य में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर मिले। सामाजिक न्याय की अवधारणा में यह बात निहित है कि अच्छे जीवन के लिये आवश्यक परिस्थितियाँ प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के प्राप्त होनी चाहिये। आजकल सामाजिक-न्याय की बातें दलों के राजनीतिक विमर्श में महत्वपूर्ण स्थान ले चुकी हैं ,बावजूद इसके अभि भी हमें इस दिशा में एक लम्बी यात्रा तय करना शेष है।

-: सामाजिक- न्याय :-

सामाजिक- न्याय दो शब्दों से मिलकर बना है सामाजिक एवं न्याय। शाब्दिक रूप से न्याय(Justice) लैटिन भाषा के शब्द जस(Jus) से बना है, जिसका अर्थ है बंधना या बांधना। अत: न्याय एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें लोग परस्पर संबंधो में बंधे रहते हैं। साधारण अर्थ में न्याय उस अवस्था का नाम है जिसमें उचित व्यवस्था हो, सामाजिक एवं व्यक्तिगत संबंधों में सामंजस्य हो, स्वार्थहीनता, तर्कसंगतता एवं निष्पक्षता हो जिससे व्यक्ति अपने अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का पालन कर सकें। □न्याय मानव आत्मा की उचित अवस्था और मानवीय स्वाभाव की प्राकृतिक माँग है□(प्लेटो)। □प्रत्येक

व्यक्ति द्वारा उस कर्तव्य का पालन जो उसके प्राकृतिक गुणों और सामाजिक स्थिति के अनुकूल है। नागरिक की अपने धर्म की चेतना तथा सार्वजानिक जीवन में उसकी अभिव्यंजना ही राज्य का न्याय है(बार्कर)। सामाजिक- न्याय का अर्थ है कि सभी लोगों को समान अवसर, अधिकार और समाज में गरिमापूर्ण व्यवहार की प्राप्ति। यह एक ऐसा सामुदायिक प्रयास है जिसका मकसद समाज में समानता और न्याय स्थापित करना है। सामाजिक- न्याय, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय से भी गहरे रूप से जुदा है। जब तक राजनीतिक व आर्थिक न्याय नही मिलेगा सामाजिक न्याय की कल्पना फलीभूत हो पाना संभव नही। सामाजिक - न्याय व्यक्ति के अधिकारों और सामाजिक नियंत्रण के बीच संतुलन स्थापित करना, जिससे कानूनों के अधीन व्यक्ति की वैध आशाओं को पूरा करने हेतु सुनिश्चित किया जा सके। तथा उसे उनके लोगो के विषय में आश्वस्त किया जा सके और राष्ट्र की एकता व समाज की आवश्यकताओं के अनुसार उसके अधिकारों का उल्लंघन किये जाने की स्थिति में प्रतिरक्षा प्रदान की जा सके। सामाजिक- न्याय के अनुरूप उसके अधिकरों का उल्लंघन किये जाने की स्थिति में प्रतिरक्षा प्रदान की जाये। सामाजिक- न्याय किसी भी आधार पर किये गये शोषण को स्वीकार नही करता। वस्तुतः सामाजिक- न्याय एक व्यापक अवधारणा है जिसमें आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय भी सम्मलित होते है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 38 में कहा भी गया है की सामाजिक- न्याय एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करती है पूर्ण या आंशिक रूप से समाज व्यवस्था या उपव्यवस्थाओं को व्यवस्थित रखने के लिये जो न्याय प्रयुक्त किया जाता है यही सामाजिक न्याय है। (झा, २०१२)

सामजिक- न्याय समता एवं न्याय पर आधारित व्यवस्था है, जिसके अंतर्गत सभी नागरिकों को सामर्थ्यवान बनाने के अवसर उपलब्ध कराने व उनकी योग्यता एवं सामर्थ्य के अनुरूप सर्वांगीण विकास के अवसर सुलभ हों तथा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग व जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव के बिना व्यक्ति को सामाजिक सदस्य के रूप में उचित स्थान तथा सम्मान प्राप्त हो। सकारात्मक प्रयासों द्वारा विषमता समाप्त करना ही सामजिक न्याय है। सामाजिक न्याय के पाँच सिद्धांत है-

1- सोतों तक सुलभ पहुँच(Access Of Resources)

2- समता(Equity)

3- सहभागिता(Participation/Opportunity)

4- विविधता(Diversity)

5- मानवाधिकार (Human Rights)

-: सामजिक- न्याय के सिद्धांत :-

सामाजिक- न्याय के पाँच मुख्य सिद्धांत हैं, जो सामाजिक न्याय की आधारशिला हैं।

1- **संसाधनों तक पहुँच** – समाज में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक समूह होते हैं जिनकी आवश्यकतायें भी अलग अलग होती हैं। समाज के सभी नागरिकों तक सुविधाएँ प्रदान करना सामजिक- न्याय का मुख्य सिद्धांत है। जिससे सभी मनुष्य अपना जीवन यापन कर सकें एवं सम्मान पूर्वक रह सकें।

2- **समता-** समता, समानता से भिन्न होती है। जहाँ समानता में सभी को समान अवसर प्रदान करना होता है, वहीं यदि समान अवसर के बाद भी लगता है कि दिया गया अवसर व्यक्ति की सामाजिक -आर्थिक स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन नही कर पायेगा तो उसे दिए गये समान अवसरों में एक अन्य सुविधा या अवसर प्रदान किया जायेगा। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है- किसी सेवा हेतु सभी को आवेदन करने हेतु समान अवसर दिया जाता है परन्तु अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग एवं कभी-कभी महिलाओं तथा दिव्यांगों को आरक्षण दिया जाता है। जिससे वे भी उस सेवा तक पहुँच सके तथा अपनी सामजिक -आर्थिक स्थिति में सुधार कर समाज में सम्मान पूर्वक जीवन यापन कर सके। समता, समानता से अलग पद है। यदि सामाजिक- न्याय केवल समानता से संबंधित होता तो यह न्यायपूर्ण समाज की ओर नहीं ले जाता।

3- **भागीदारी** -भागीदारी से तात्पर्य है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी राय और चिंताओं को मौखिक रूप से व्यक्त करने तथा किसी भी निर्णय लेने में भूमिका निभाने का अवसर दिया जाता है, जो उनकी आजीविका और जीवन स्तर को प्रभावित करती है। सामाजिक अन्याय तब होता है जब कोई एक दूसरे समूह, एक बड़े समह के सम्बन्ध में लिये निर्णय लेता है और जिस समूह के सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है वे अपनी राय व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं। अक्सर देखा गया है कि ज्यादातर समाजों में महत्वपूर्ण निर्णयों में भागीदारी सिर्फ कुछ लोगों के लिये आरक्षित होती है। पहुँच बढ़ाने के लिये समाज को भागीदारी में आनेवाली बाधाओं को दूर करना चाहिये। समता के लिये आवश्यक है कि ऐतिहासिक रूप से कमजोर समूहों को अपनी आवाज मुखररूप से व्यक्त कर पाने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिय।

4- **विविधता** – भारतीय समाज में अनेक सांस्कृतिक विविधता पाई जाती है, उन सबका सम्मान करना, सबको समझना आवश्यक है । नीति निर्माताओं को ऐसी नीतियों का निर्माण करना चाहिये जो विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच मौजूद मतभेदों को ध्यान में रखकर बनाई गई हो । क्योंकि कुछ समूहों को समाज में अधिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है । नीति निर्माताओं, प्रशासनिक व्यवस्था और नागरिक समाज को हाशिये पर पड़े या वंचित समूहों के लिये अवसरों का विस्तार करने की दिशा में बिना सामाजिक -सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों व सभी की सांस्कृतिक विविधता का आदर कर नीति निर्माण करना चाहिये ।

5- **मानवाधिकार** -मावाधिकार सामजिक- न्याय कि अवधारणा का महत्वपूर्ण अंग है । मानवाधिकार और सामजिक न्याय निश्चित रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं । मानव अधिकार उन समाजों के लिये निश्चित ही महत्वपूर्ण होना चाहिये, जो व्यक्तियों, संगठनों के नागरिक, आर्थिक, राजनीतिक, संस्कृतिक और कानूनी अधिकारों का सम्मान करते है । यदि वे इन अधिकारों को बनाये रखने में विफल रहते हैं तो उन्हें जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिये ।

-: सामजिक - न्यायिक चरित्र :-

वास्तव में चरित्र उन सब प्रवृतियों का योग है जो उसमें निहित हैं (डमविल) ।कारमाइकेल मानते है कि चरित्र एक गतिशील धारणा है यह व्यक्ति के व्यवहार की विधियों का पूर्ण योग है । अर्थात सामाजिक - न्यायिक चरित्र से तात्पर्य है –उसामजिक -न्याय की मान्यताओं, अवधारणाओं, मूल्यों एवं सिद्धांतों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण व उसके अनुरूप भावना एवं व्यवहार । अर्थात सामाजिक न्यायिक चरित्र में वे सब प्रवृतियां एवं शामिल होते हैं, जो सामाजिक न्याय के अनुरूप व्यवहार के रूप में प्रदर्शित होते हैं ।

-: निष्कर्ष :-

प्राचीन न्याय व्यस्था जहाँ भेदभाव पर आधारित थी वहीं आधुनिक व्यवस्था में सभी के विकास पर ध्यान दिया जाता है । भारतीय संविधान में सामाजिक -न्याय हेतु जो उपबंध दिए गये हैं उन्ही के आधार पर सरकारें भी अपनी योजनाओं का निर्माण करती हैं । प्रत्येक व्यक्ति को इतने अधिकार मिले है कि यदि उनके साथ कोई अन्याय होता है तो वह उनकी रक्षा हेतु न्यायालय जा सकता है और न्याय प्राप्त कर सकता है । परन्तु महत्वपूर्ण यह जाता है कि हम अपने को सबसे प्राचीन श्रेष्ठ एवं

उदार सभ्यता मानते है । परन्तु देखते है कि इन सब के बावजूद भी हमारे इतिहास एवं धार्मिक ग्रंथो में व्यक्ति द्वारा जाति, वर्ण, लिंग के आधार पर भी व्यक्ति के शोषण के अनेक उदहारण मिलते हैं । आजादी के इतने वर्ष बाद भी कुछ मानवों के मस्तिष्क में आज भी ऊँच-नीच, स्पर्श्यता, अमीर- गरीब के आधार पर भेदभाव की भावना रहती है । सरकारों एवं भारत के नागरिक समाज का फर्ज बनता है कि वे भारत के लोगों को सामाजिक- न्याय की संकल्पना के बारे में बतायें । पाठयक्रम द्वारा भी सामाजिक- न्याय के मूल्यों के आत्मसातीकरण हेतु प्रयास किये जाएँ, जिससे हमारी युवा पीढी सामाजिक- न्याय के सिद्धांतो, मान्यताओं, मूल्यों, आदर्शो को समझ कर उनको अपने चरित्र का अंग बनायें और उनमें सामाजिक -न्यायिक चरित्र का निर्माण हो सके । जब तक सामाजिक -न्यायिक चरित्र का निर्माण व्यक्तियों में नही होगा, सरकार कितनी भी योजनायें बनाले, वे पूर्णरुप से क्रियान्वित नहीं हो सकती हैं । इसलिये यह जरुरी हो जाता है कि यदि भारत को स्स्स्त व खुशहाल बनाना है, ऐसे समाज की स्थापना की जाये जिसमें एक दुसरे के प्रति प्रेम, सहिष्णुता, भाईचारा, सहयोग, एवं सम्मान की भावना हो, और इसके लिये जरुरी है कि भारत के नागरिकों में सामाजिक -न्यायिक चरित्र का निर्माण किया जाये ।

-:सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

Barker, S. E. (1977). *Greek Political Theory: Plato and his Predecessors*. London: Routledge

Bhandari, S. (2014). The Ancient and Modern Thinking about Justice: An Appraisal of the Positive Paradigm and the Influence of International Law. *Ritsumeikan Annual Review of International Studies*, vol. 13, pp. 1-41, available at http://www.ritsumei.ac.jp/acd/cg/ir/college/bulletin/e-vol.13/01_Bhandari.pdf accessed on October/23/2019.

Boulding, K. E. (1962). *Social Justice in Social Dynamics*. Edited by: Richard P. Brandt et al. in Book "Social Justice", Englewood Cliffs, N.J.: Prentice-Hall.

Chandrachud, H. Y. V. (1991). *Fundamental Rights in Their Economic, Social and Cultural Context*. Edited by: Commonwealth Secretariat in Book: "Developing Human Rights Jurisprudence: A Third Judicial Colloquium on the Domestic Application of International Human Rights Norms", Gambia: Commonwealth Secretariat.

Ghai, K. K. (?). Speech on Justice: Meaning and Types of Justice. Available at http://www.yourarticlelibrary.com/speech/speech-on-justice-meaning-and-types-of-justice/40361 accessed on October/22/2019).

Singh, B. (1976). *The Supreme Court as an Instrument of Social Justice*. New Delhi: Sterling Publishers.

झा, राकेश, कुमार.(२०१२). *भारतीय चिंतन परंपरा में सामाजिक न्याय : एक विश्लेषण*. राज्य शास्त्र समीक्षा अंक 33(1-2).

फाडिया, बी. एल. (२००९). *पाश्चात्य राजनीतिक विचारक*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.

यादव, पूरणमल. (२०१६). *दलित संघर्ष और सामाजिक न्याय*. जयपुर: आविष्कार पब्लिकेशन.

सीमतवाल, नरेन्द्र.(२०१२). *भारतीय संविधान तथा सामाजिक न्याय*. जयपुर: पॉइंटर पब्लिकेशन.

सामाजिक न्याय - अवलोकन, इतिहास और विकास, पाँच सिद्धांत https://corporatefinanceinstitute.com/resources/esg/social-justice/

सामाजिक न्याय का अर्थ और मुख्य सिद्धांत समझाया गया

https://www.investopedia.com/terms/s/social-justice.asp

सामाजिक न्याय

https://www.bbau.ac.in/Dept/FoundationCourse/TM/MPDC405/Social%20Justice%20and%20Dr%20Ambedkar%20in%20Hindi.pdf

सामाजिक न्याय

https://ncert.nic.in/textbook/pdf/khps104.pdf

सामाजिक न्याय

https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%9C%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%AF